International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 8, Issue 06, June 2021
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के बाद की अवधि की विकास घटनाएँ

डॉ. मोहम्मद नज़रुल होदा पीएचडी (मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू युनिवर्सिटी, हैदराबाद)

आर्थिक सुधारों का क्रियान्वयन किये हुए 3 दशकों से थोड़ा अधिक समय हो चुका है। भारतीय अर्थव्यवस्था में इस अवधि में हुए वृहत् प्रगतियों का मूल्यांकन करने के लिए यह मामूली अवधि है। इस अवधि में किये गये सुधारों की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करने के पश्चात् हम सुधार नीति के आलोचनात्मक मूल्यांकन का प्रयास करेंगे। क्योंकि इन सुधारों ने अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित किया है। इन उपायों में से अधिकांश सुधार कार्यक्रम के प्रारंभिक चरण में किये गये थे, किन्तु हम संपूर्ण सुधार कार्यक्रमों को पूर्ण नहीं कर सके।

सुधार प्रक्रिया के कुछ महत्त्वपूर्ण लक्षण निम्न प्रकार रहे हैं–

1) उपायों की उचित क्रमबद्धता, सभी क्षेत्रों में पूरक सुधार (उदाहरण के लिए मौद्रिक, राजकोषीय एवं बाह्य क्षेत्रों में सुधार) तथा वित्तीय संस्थाओं एवं बाजारों के विकास के साथ सुधारों के प्रति दृष्टिकोण सतर्कतापूर्ण रहा है।

2) उदारीकरण की गति एवं क्रमबद्धता घरेलू प्रगतियों विशेष रूप से मौद्रिक एवं वित्तीय क्षेत्रों तथा उभरते हुए अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय ढाँचे के प्रति उत्तरदायी रहा है।

3) सुधारों के प्रति दृष्टिकोण 'धूम.धड़ाके' के स्थान पर धीमा एवं सतत् रहा है।

4) सुधार प्रक्रिया का संचालन करने वाला ब'हत जोर समष्टिपरक स्थिरता के साथ अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि तथा कार्यकुशलता पर था।

शोधकर्ता सुधारों के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए भिन्न.भिन्न प्रविधियों का उपयोग करते हैं। इस संबंध में सामान्यतः दो दृष्टिकोण प्रचलित हैं–

1) माडल आधारित तथ्य विरोधी अनुकरण जो वैकल्पिक सुधार परिवेश के अंतर्गत वास्तविक परिणामों की तुलना करने का प्रयास करते हैं।

2) 'पूर्व एवं पश्चात्' दृष्टिकोण हम सुधारों के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिए पश्चात्वर्ती दृष्टिकोण का मूल्यांकन करेंगे।

आर्थिक सुधारों की उपलब्धि के विषय में कम से कम यह कहा जा सकता है सुधारों ने अर्थव्यवस्था को 1990.91 के गंभीर दिल के दौरे से बचा लिया। किन्तु यह सब कुछ नहीं है। वर्तमान आर्थिक स्थिति जून 1991 की तुलना में परिवर्तित हो गयी है।

नये आर्थिक वातावरण में स्वयं शब्दावली ही परिवर्तित हो गयी है। इससे पूर्व महत्त्वपूर्ण शब्दावली एवं वाक्यांश अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा शक्ति, कार्यकुशलता, लाभनीयता, तकनीक सुधार, विदेशी पूँजी, वैश्वीकरण तथा सुनहरा हस्तमिलन इत्यादि हैं। आइये, हम बड़े परिवर्तनों में से कुछ का पुनरावलोकन करें।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

यह अंकित करना हर्ष का विषय है कि पिछले दो दशकों से बाह्य क्षेत्र के प्रबंधन की विशेषता 'बाह्योन्मुखी', विनियोग, उदारीकरण तथा रुपये की परिवर्तनीयता के मामले में सतर्कता के विवेकपूर्ण संयोग के रूप में है। इसका प्रमुख परिणाम यह रहा है

आर्थिक सुधारोत्तर अवधि में बृहत् विकास घटना कि जिन अत्यधिक उतार.चढ़ावों ने संपूर्ण विश्व में करेंसी बाजारों को अस्तव्यस्त कर दिया था, उनका भारत पर बहुत कम विनाशकारी प्रभाव पड़ा।

कुछ अन्य सकारात्मक लाभों की गणना निम्न प्रकार की जा सकती है :

1) हमारे निर्यात कार्य निष्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि इस सोच को और मज़बूत बना देती है कि 'भारत में निर्मित' की धारणा धीरे. धीरे किन्तु निश्चित रूप से अपने रूप में आ रही है। उपलब्ध आँकड़े यह व्यक्त करते हैं कि निजी निगमित क्षेत्र की निर्यात गहनता (प्रति इकाई बिक्री पर विनिर्माण निर्यात) 1998.99 में 13.37 प्रतिशत से दोगुनी होकर 2008.09 में 24.23 प्रतिशत हो गयी है। इसके अतिरिक्त 50 बड़े व्यावसायिक घरानों, विदेशी स्वामित्व वाली एवं सरकारी कंपनियों के निर्यातबिक्री अनुपात में भी इस अवधि में सुधार हो गया है। इसके अतिरिक्त निगमों के विनियोग में भी इस अवधि में सुधार हो गया है। इसके अतिरिक्त निगमों के विनियोग पर प्रतिफल घरेलू बाज़ारों की अपेक्षा बिक्री पर अधिक आता है। यह स्थिति पूर्व.उदारीकरण तथा उदारीकरण के प्रारंभिक दिनों की अवधि की तुलना में बिलकुल विपरीत है जहाँ कि लाभों में कम अंतर ने संरक्षित घरेलू बाज़ार में बिक्री को अत्यधिक आकर्षक प्रस्ताव बना दिया था।

2) हमारे निर्यातों की उत्पाद संरचना में तकनीक गहन तथा उच्च मूल्य उत्पादों की ओर धीमी गति से किंतु निर्णायक रूपांतरण हो रहा है। यह स्वचालित वाहनों के निर्यातों में तीव्र वृद्धि से सूचित होता है जिसका निर्यात वर्तमान दशक में सॉफ्टवेयर निर्यातों से भी अधिक हो गया है। इससे 'उच्च बाजार' एवं 'आला' स्थानों में भारत का प्रवेश संभव हो गया है।

3) निर्यातों की प्रति इकाई आयात के रूप में मापित निगमित निर्यातों की आयात गहनता 1998.99 में 114.35 प्रतिशत से कम होकर 2008.09 में 86.86 प्रतिशत हो गयी जो इस बात को व्यक्त करती है कि आयातों के उपयोग में कंपनियाँ अधिक मितव्ययी हो रही हैं। वास्तव में, निगम नये मिलेनियम के प्रथम दशक से आयातित उत्पादों में अधिक मूल्य वृद्धि कर रहे हैं। यह कुल कच्चा माल व्ययों में आयातित कच्चे माल के अनुपात तथा 1998.99 एवं 2008.09 के बीच इकाई सकल स्थिर परिसंपत्तियों पर पूँजीगत वस्तुओं के आयात में वृद्धि के बावजूद है।

4) अन्य बड़ा आश्चर्य यह है कि पहले से हटकर निगम देश के विशुद्ध विदेशी विनिमय अर्जित करने वालों के रूप में उभर कर आ रहे हैं। निजी क्षेत्र का विशुद्ध विदेशी विनिमय प्रवेश की दर 1998.99 में (दृ)14.35 प्रतिशत से परिवर्तित होकर 2008.09 में (+) 13.14हो गयी है। यह परिवर्तन उच्चस्थ 50 व्यावसायिक घरानों में और अधिक स्पष्ट है जहाँ ये संख्याएँ दृ41.3 से बढ़कर उपरोक्त अवधि में ही +17.5 हो गयी है। यह सब इस बात का संकेत करता है कि निगम निर्यात बाजार में सरकार द्वारा दिये जाने वाले प्रोत्साहनों के कारण नहीं बल्कि निर्यातों से कार्यकुशलता में लाभ की संभावनाओं के कारण प्रवेश कर रहे हैं।

5) विनिमय की 'हवाला दर' लगभग गायब हो गयी है। जो विदेशी विनिमय भंडार जून 1991 में कम होकर +1 बिलियन से कम हो गये थे, वे अब +300 बिलियन से अधिक हो गये हैं। पिछले बीस वर्षों (1991.92 एवं 2011.12 के बीच) में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोगों की स्वीकृति +100 बिलियन पार कर गयी है। इसकी तुलना 1980 के दशक की अवधि में किसी एक वर्ष में अधिकतम +20 मिलियन से की जा सकती है। विदेशी संस्थागत विनियोग प्रारंभ में बाल्टी भर

कर अर्थात् अत्यधिक आया। 1993.2009 की अवधि में ही इनका अनुमान +40 बिलियन है। इसकी तुलना पूर्व वर्षों में शून्य के परिप्रेक्ष्य में की जा सकती है।

6) केवल 7 वर्ष पूर्व 5 से कम की तुलना में 9000 श्रृंखला से सर्टिफिकेट प्राप्त करके अंतर्राष्ट्रीय गुणवत्ता मानदंड प्राप्त करने वाली कंपनियों की संख्या 5000 से अधिक हो गयी है।

7) विदेशी विनियोग अब एकतरफा मार्ग नहीं है। निगमित भारत अब संयुक्त उपक्रमों, अधिग्रहणों एवं लाइसेंस व्यवस्था के माध्यम से संपूर्ण विश्व में जाने लगा है। अनेक तत्वों ने इस प्रक्रिया को सुविधाजनक बना दिया। जैसे विकसित विश्व में परिसंपत्तियों की कम कीमतें, विश्व वित्तीय बाजारों में अतिरेक तरलता की स्थिति एवं डालर कोषों पर कम ब्याज दरें, आर्थिक चक्र के उच्चतम स्तर में मजबूत घरेलू वृद्धि द्वारा वैश्विक विस्तार के लिए आवश्यक नकदी का सृजन इत्यादि। बाहर की ओर प्रवाह +15 बिलियन वार्षिक से अधिक हो गया। अभी भारतीय बहुराष्ट्रीय निगम कहना बहुत जल्दबाजी होगी, किन्तु वे ऐसे क्षितिज पर है जिसे वैश्विक भारतीय अधिग्रहण में प्रथम विश्राम स्थल कहा जा सकता है।

8) अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश ने भारत को अपनी वित्तीय लेन.देन योजना में चुना है जो संकटग्रस्त देशों का बचाव करती है। अतः अब हम उधार लेने वाले के बजाय उधार देने वाले बन गये हैं। बाह्य क्षेत्र में उपलब्धियाँ अधिक प्रशंसनीय प्रतीत होती हैं। संभवतः इसका कारण किये गये उपायों की संगति, एक साथ कार्यवाही एवं दूरदर्शिता थी। उदाहरण के लिए, अब सभी व्यापार समान भुगतान शासन प्रणाली के अंतर्गत हैं (अब कोई कठोर, कोमल तथा रुपये में व्यापार क्षेत्र नहीं है)। एकीकृत विनिमय दर चालू खाते में रुपये की परिवर्तनीयता के वास्तविक मूल्य को अधिक प्रतिबिंबित करती है। अधिकांश आयातों तथा निर्यातों पर प्रतिबंधों की समाप्ति, आयात करों की अत्यधिक कमी, सोने एवं चाँदी का उदार आयात कुछ अन्य उपाय थे। पहले की पुरानी, भद्दी, पुनः पूर्ति तथा अग्रिम लाइसेंस, नकद क्षतिपूर्ति तथा अनुदान योजनाओं के बजाय अब कर छूट के साथ स्पष्ट निर्यात प्रोत्साहन प्रणाली विद्यमान हैं। विदेशी विनियोगों पर प्रतिबंधों की लगभग पूर्ण समाप्ति बाह्य क्षेत्र में नई आर्थिक नीतियों का एक सकारात्मक लक्षण हो गया है। ये परिवर्तन आधारभूत हुए हैं।

यह भी तर्क दिया जाता है कि बाह्य मोर्चे पर अर्थव्यवस्था के दोष अधिकाधिक स्पष्ट होते जा रहे हैं। यह तर्क दिया जा रहा है कि भारतीय अर्थव्यवस्था का वैश्वीकरण एक चूहे को हाथियों के झुंड में मिला देने जैसा है।

1) निम्नलिखित कारण निर्यात मोर्चे की उपलब्धियों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं :

– ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि निर्यातों में कोई ऐसा मेदन हुआ है जो विश्व निर्यातों में देश के अंश में वृद्धि के रूप में प्रतिबिंबित होगा। इसका दो दृष्टिकोणों से और अधिक आलोचनात्मक अवलोकन किया जाना चाहिए। (क) निर्यातों की संरचना में संभवतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। (ख) निगमित क्षेत्र का कार्य निष्पादन निर्यातों की तीव्रता में वृद्धि करने का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करता है।

– देश के कुछ महत्त्वपूर्ण निर्यातों की प्रवृत्तियों में जो कुछ भी हुआ है वह उत्साहवर्धक ह" जैसे

– सिले. सिलाए वस्त्र, चमड़े से निर्मित वस्तुएँ

– निर्यातों के परिप्रेक्ष्य में अनेक मोर्चो पर सुधार अपूर्ण रहे हैं। इसके अंतर्गत भेदभावपूर्ण उत्पाद शुल्क संरचना, निर्यातों एवं आयात गतिविधियों का बोझिल तरीका, श्रम बाजार के सुधार तथा घटिया बैंकिंग एवं बीमा सेवाएँ इत्यादि सम्मिलित हैं।

2) सुधार के पश्चात् की अवधि में भारत की बाह्य देयताओं में तीव्र वृद्धि हुई है। पिछले दशक में विदेशी विनिमय भंडार में वृहत वृद्धि अंतिम विश्लेषण में पर्याप्त सिद्ध नहीं होती हैं।

इसके अतिरिक्त तेज़ी से बढ़ते हुए भंडार ऐसे चिह्न हैं जिन्हें कभी डेनमार्क की बीमारी (किन्तु अब 1997 के बाद जिसका नाम 'थाई बीमारी') के रूप में पुकारा जाता था। यह वृद्धि चालू खाते में नहीं हुई है बल्कि पूँजीगत खाते में हुई है जिसमें गर्म से बहुत गर्म मुद्रा सम्मिलित है जो बहुत अल्प सूचना पर देश को छोड़ सकती है।

3) विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग सामान्यतः एक ऐसा विनियोग माना जाता है जो भौतिक परिसंपत्तियों का सृजन करता है तथा जो विशेष रूप से प्रबंधकीय निपुणता के कारण स्थिरता के अंश से संबंधित है। तथापि, निजी सममूल्य अंश कोषों एवं जोखिम पूँजी कोषों के माध्यम से नये प्रकार के थ्क्प् प्रवाह का भौतिक परिसंपत्तियों में विनियोग हो यह आवश्यक नहीं। उसमें उतार. चढ़ाव की संभावना निहित होती है।

4) इसी प्रकार समता पूँजी में वर्तमान भागीदार प्राप्त करने या भारतीय कंपनियों में विदेशी भागीदारी में विस्तार करने को थ्क्प् के रूप में वर्गीकरण किया जाता है। किन्तु वे अतिरिक्त परिसंपत्तियों के सृजन में और अधिक वृद्धि नहीं करते हैं।

5) विदेशी संस्थागत निवेष अपने खाते में सामान्यतः दीर्घकालीन निवेशक होते हैं तथा उनकी प्रबंधकीय नियंत्रण में बहुत कम या कोई रुचि नहीं होती है। तथापि, भारत में श्रेणी में विनियोग में महत्त्वपूर्ण भाग भागीदारी नोट तथा उपखाते के माध्यम से होती है। पूँजी प्रवाह, विशेष रूप से पोर्टफोलियो प्रवाह सरलतापूर्वक अपनी दिशा परिवर्तित कर सकते हैं तथा इस प्रकार पूँजी प्रवाह के संबंध में 'मूल के नियमों' को लागू करना कठिन होता है।

6) भारत ने विदेशी सहयोग तथा थ्क्प् के माध्यम से आयातित तकनीक डिज़ाइन एवं उपकरणों पर अत्यधिक विश्वास किया तथा स्वदेशी क्षमता का सृजन करने पर बहुत कम ध्यान एवं प्रयास किया। एक असमान विश्व में इस दृष्टिकोण का परिणाम उस स्वायत्तता की सीमा को गंभीर रूप से कम करता है जो देश में न्याय एवं सतत्ता से संगत अपनी विकास प्राथमिकताओं का निर्माण करने में हो सकती है।

7) ज्यों.ज्यों निजी सममूल्य एवं हेज कोष विनियोगों में वृद्धि होती है, अंशधारकों की सक्रियता अधिक स्पष्ट हो जाती है। पहले से ही विदेशी निवेशक की माँग की शर्तों के चिह्न हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्था को चोट पहुँचा सकते हैं। व्यष्टि स्तर पर वे उस व्यवस्था के विषय में आग्रह करते हैं जो उद्योग की अपेक्षा स्थानीय माँगों का अपेक्षाकृत अधिक हिस्सा प्राप्त करने में उन्हें सक्षम बनाते हैं। समष्टि स्तर पर पहले से ही भारत पर आयातों को और अधिक उदार बनाने का दबाव है। अब तक भुगतान संतुलन विपरीत होने के तर्क के आधार पर भारत के पास एक बड़ी संख्या में मदों पर तटकर लगाने का विकल्प था। उन विदेशी निवेशकों का प्रतिनिधित्व करने वाले देशों की ओर से भारत पर इस छूट को त्याग देने का दबाव है।

8) वैश्वीकरण की अवधि के बाद सेवा क्षेत्र को होने वाली कुल आय का लगभग 1/3 भाग आय विदेशी नागरिकों को हुई है। इसकी विपरीत प्रक्रिया अर्थात् वैश्विक आय का अंश प्राप्त करने की प्रक्रिया आनुपातिक रूप से बहुत कम रही है। अन्य शब्दों में, हमने अपनी अर्थव्यवस्था में खाने हेतु विदेशियों के लिए अवसर खोले हैं। कुल मिलाकर हमें विदेशी अंतःक्षेत्र की और अधिक किलेबन्दी दिखायी देती है जो पहले से ही हमारे पास एक छोटी, आधुनिक एवं तकनीकी रूप से उन्नत अर्थव्यवस्था है जो बाहरी विश्व से अधिक तथा भारत से अपेक्षाकृत कम जुड़ी हुई है। किन्तु, इस प्रकार की विदेशी अंतःक्षेत्र अर्थव्यवस्था बनाये रखने योग्य नहीं है। कालांतर में इस विदेशी अंतःक्षेत्र की दीवार को बाहर वालों द्वारा पार कर लिया जायेगा या इसकी नींव सामाजिक मुठभेड़ द्वारा खोखली कर दी जायेगी।

9) भारत को एक नयी वृद्धि के मार्ग पर स्थापित करने वाली पूँजी के आगमन की भूमिका उन कारणों से विकास प्रक्रिया कमज़ोर बना देती है जो हाल के समय में स्पष्ट हो गये हैं। इस कमज़ोरी का एक स्रोत त्ठप् द्वारा रुपये के विनिमय दर में वृद्धि को रोकने के प्रयासों के बावजूद उसमें निरंतर वृद्धि थी। रुपये के मूल्य में वृद्धि भारतीय निर्यातों की प्रतिस्पर्धा शक्ति को कम कर रहा था तथा उस निर्यात प्रोत्साहन को कमजोर बना रहा था जिसने सेवा एवं विनिर्माण दोनों के सुधार में योगदान किया। कमज़ोरी का अन्य संभव स्रोत विदेशी पूँजी के बहिर्गमन के कारण तरलता संकुचन का डर है जिसके कारण भारत के आर्थिक कार्य निष्पादन से संबंधित नहीं हैं। विदेशी पूँजी प्रवाह की निर्भरता ने भारत को अन्य स्थानों पर वित्तीय संकट के छुआछूत प्रभाव से दोषपूर्ण बना दिया है। संकट का एक परिणाम विदेशी निवेशकों द्वारा भारत में अधिग्रहीत परिसंपत्तियों को बेच देने की प्रवृत्ति होती है। वे उस आय को स्वदेश ले जाते हैं ताकि अन्य स्थानों पर बचत पूरी की जा सके एवं नुकसान की भरपाई की जा सके।

10) यद्यपि देश में लगायी गयी अस्थिर पूँजी का बाज़ार मूल्य अनिश्चित होता है, भारत के विदेशी विनिमय भंडारों के वर्तमान मात्रा के एक महत्त्वपूर्ण सीमा से अधिक होने की संभावना है। यहाँ तक कि यदि अधिकारी रूढ़िवादी राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति अपनाते हैं तो भी देश को भुगतान संतुलन संकट का सामना कर पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त अत्यधिक अस्थिर एवं प्रमुख रूप से थ्प् द्वारा लाभ प्राप्त करने के कारण विदेशी विनिमय की निकासी वर्तमान में भारत को देखते हुए बहुत अधिक है। जो उपनिवेशवादी युग के बाद के भाग की अवधि में अंग्रेजों द्वारा शुल्क वसूल किये जाने से तुलना करने को प्रेरित करता है।

इस अवधि में निगमित पुनर्संरचना, लागत विवेकीकरण, उत्पादकता सुधार, क्षमता की बाधाओं में कमी के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था द्वारा उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की गयी है। खेत से गैर.खेत, ग्रामीण से शहरी, एनालाग से डिज़िटल, शारीरिक से तकनीक द्वारा संचालित, घरेलू ध्यान से निर्यात जैसे अनेक संक्रमण एक साथ हो रहे हैं। सकारात्मक उपलब्धियों में से कुछ को निम्न प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है :

1) 1990 के दशक तथा 2001.10 की अवधि में 6.9 प्रतिशत वृद्धि की दर की प्रवृत्ति 1980 के दशक में दर्ज की गयी 5.5 प्रतिशत की अपेक्षा स्पष्ट रूप से अधिक है। औसत वृद्धि दर के रूप में 1990 के दशक में 6.5 प्रतिशत तथा 2002.10 की अवधि में 8 प्रतिशत, 1980 के दशक में 5.8 प्रतिशत की अपेक्षा बेहतर थी।

2) घरेलू विनिर्माण क्षेत्र ने आयात प्रतिस्पर्धा एवं बदलती हुई समष्टिपरक दशाओं के प्रत्युत्तर में अपने सापेक्षिक लाभ की पुनः खोज करने तथा उत्पादन क्षमताओं के पुनः निर्माण करने में उल्लेखनीय लचीलापन, योग्यता एवं प्रवीणता प्रदर्शित की है। देश विनिर्माण क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण क्षमता एवं तकनीक को उन्नत करने के चरण में देख रहा है। यह स्वदेश में विनियोग माँग का सृजन कर रहा है। तथा साथ ही घरेलू फर्मों को विदेशी बाजारों में उच्च कोटि की तकनीकों की तलाश में उनकी गति तीव्र कर रहा है। उत्पादकता में तीव्र गति से वृद्धि हुई हैं। इसका अर्थ कम श्रमिकों द्वारा अधिक उत्पादन दिये जाने से होता है। उत्पादकता में तीव्र वृद्धि तकनीक में प्रगति, प्रक्रियाओं के क्रियान्वयन तथा माँग करने वाले नियोक्ताओं एवं चुनाव करने वाले उपभोक्ताओं को संतुष्ट करने की आवश्यकता से उत्पन्न होती है। मज़दूरी में वृद्धि की बढ़ी हुई उत्पादकता का कारण एवं प्रभाव दोनों ही के रूप में देखा जा सकता है। फिर भी भारत को विकसित पश्चिम देशों में स्वीकार की गयी प्रक्रियाओं एवं प्रणाली के साथ आने में अभी बहुत लंबा मार्ग तय करना है।

3) 1983 से 1993.94 की अवधि में 2.6 प्रतिशत से 1993.94 से 1999.2000 की अवधि में 1.2 प्रतिशत की रोज़गार वृद्धि दर में प्रारंभिक गिरावट के पश्चात् यह 2000. 01 से 2004.05 की अवधि में तेज़ी से बढ़ कर 3.8 प्रतिशत हो गयी। यह दर जनसंख्या वृद्धि की दर की अपेक्षा दुगुनी से अधिक है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण एवं शहरी भारत दोनों में वास्तविक मज़दूरी की दरों में वृद्धि हो रही है। उदारीकरण के पश्चात् की अवधि में (1993.94 से 2004.05) में वास्तविक मज़दूरी वृद्धि उदारीकरण से पूर्व (1983.1993.94) की अवधि की अपेक्षा अधिक तेज़ी से हुई है। यह प्रवृत्ति उसके बाद भी निरंतर बनी रही है। इस वृद्धि से ग्रामीण, शहरी, नियमित एवं आकस्मिक सभी श्रेणियों को लाभ मिला है। तथापि, नियमित श्रमिकों की स्थिति आकस्मिक श्रमिकों से थोड़ी बेहतर थी तथा ग्रामीण श्रमिकों की स्थिति शहरी श्रमिकों से बेहतर थी। नियमित एवं आकस्मिक श्रमिकों के बीच मज़दूरी के अंतर ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में बढ़ते रहे हैं। यह ग्रामीण क्षेत्रों के नियमित एवं आकस्मिक के बीच कम हुआ है।

4) निगमित क्षेत्र के परिणाम यह प्रदर्शित करते हैं कि यद्यपि विशुद्ध लाभ में वृद्धि हुई है किन्तु सकल लाभ सीमाएँ कम होती रही हैं। जिसका अर्थ होता है कि उपभोक्ता अधिक लाभान्वित हो रहे हैं। अतः हम 'विजयी' की स्थिति में हैं जिसमें उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों को ही लाभ हुआ है। यही लाइसेंस विहीन उत्पादन तथा उदारीकृत आयातों के माध्यम से प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करने के माध्यम से सुधारों को प्राप्त करना चाहिए।

5) अब वृद्धि की प्रेरणाएँ संपूर्ण अर्थव्यवस्था में विस्तृत रूप से वितरित हैं। अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्र 'वृद्धि के सुर' का अनुभव कर रहे हैं। एक पर्यवेक्षक इस प्रकार प्रस्तुत करता है 'कल्पना से फैशन तक सब कुछ चलायमान है।'

6) उदारीकृत शासन प्रणाली के अंतर्गत भारतीय व्यापार चक्र नियंत्रित शासन प्रणाली के अंतर्गत की अपेक्षा बहुत कम अस्थिर है। उदारीकरण ने आर्थिक अभिकर्ताओं के लिए जोखिम में हिस्सेदारी के वातावरण का सृजन किया है। यद्यपि आर्थिक खुलेपन के पश्चात् अर्थव्यवस्था बाह्य धक्कों से अपेक्षाकृत अधिक दोषपूर्ण हो गयी है किंतु उदारीकरण की स्थिति में उत्पादन में उतारचढ़ाव को रोकने के लिए नीति.निर्माताओं को पहले की अपेक्षा अधिक तरीके उपलब्ध हो गये हैं।

7) तटकर की संरचना का बहुत अधिक सीमा तक विवेकीकरण कर दिया गया है। तथा कर दरों एवं करों के माध्यम से एकत्रित धनराशि के बीच विपरीत संबंध आज वास्तविकता में घटित होते दिखायी दे रहे हैं।

8) पिछले 10 वर्षों में औद्योगिक संबंधों में उल्लेखनीय सुधार हुआ है। औद्योगिक विवाद कम होकर लगभग 1/3 हो गये हैं तथा खोये गये श्रम दिवसों में 20 प्रतिशत की कमी हो गयी है।

9) उच्च वृद्धि दरों ने सरकार के लिए आय में समृद्धि उत्पन्न की है। सरकार ने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना, भारत निर्माण, सर्वशिक्षा अभियान तथा शिक्षा का अधिकार अधिनियम को सम्मिलित करते हुए बड़े सामाजिक प्रयास किया। अगला कार्यक्रम भोजन का अधिकार अधिनियम है जिसके अंतर्गत परिवारों को 35 कि.ग्रा. प्रतिमाह अत्यधिक अनुदानित खाद्यान्न प्रदान किया जायगा। जनजातीय अधिकारों के लिए एक नया कानून लागू किया गया है किन्तु इसका पूर्ण क्रियान्वयन नहीं किया गया है।

इन सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप मानसिक सोच में परिवर्तन आया है। एक उभरता हुआ नया मध्यम वर्ग अब उदारीकरण तथा सुधारों के रथ का संचालन कर रहा है। ये सूचक अपेक्षाकृत कम समय में उल्लेखनीय हानि से लाभ में

परिवर्तन सिद्ध करता है। तथापि, ये सब हमें असफलताओं पर भी दृष्टिपात करने से नहीं रोकता है।

एक प्रारंभिक सुख का आभास होने के बाद ऐसा प्रतीत होने लगा कि सुधारों ने गति खो दी है। भारतीय अर्थव्यवस्था के चारों ओर 'अविवेकपूर्ण बाहुल्य' हो गया है। जिस प्रकार की वृद्धि विगत कुछ वर्षों में हमने देखी है वह एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर सकती है जिसमें लोग सोचते हैं कि यह हमेशा बनी रहेगी। विनियोग के अपेक्षाकृत ऊँचे स्तर तथा विनियोग की उत्पादकता के बिना इन बातों के बने रहना कठिन है। और अधिक सुधारों के बिना समावेशी बनाने में वृद्धि करना कठिन होता है। कुछ महत्त्वपूर्ण असफलताओं का उल्लेख नीचे किया जा सकता है।

1) नई आर्थिक नीति ने अर्थव्यवस्था में किसी प्रकार का परिवर्तन उत्पन्न नहीं किया है जैसा कि विभिन्न सूचकों द्वारा संकेत किया गया है। **प्रथम,**औद्योगिक क्षेत्र का अंश वर्तमान में वही है जो यह 1989.90 में था। उससे पाँच वर्ष पूर्व की अवधि में इस अंश में निरंतर वृद्धि हुई है। **द्वितीय,** कृषि के अंश में कमी की गति सेवा क्षेत्र के द्वारा प्राप्त कर ली गयी है किंतु अर्थव्यवस्था में सेवाओं के अपेक्षाकृत अधिक अंश ने सेवाओं की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं किया है। रोज़गार के अंश में अनुकूल परिवर्तन साधन होने पर सेवा क्षेत्र के पक्ष में भारतीय अर्थव्यवस्था के तीव्र संरचनात्मक संक्रमण का विस्तृत अभिप्राय इस वृद्धि ढाँचे की निरंतरता का ही नहीं बल्कि निर्धनता, असमानता एवं उत्पादकता के लिए भी होता है।

2) विशेष रूप से वित्तीय क्षेत्र के उदारीकरण एवं अर्थव्यवस्था को खोलने से संबंधित अच्छे/औसत के लंबे दौर के स्थिरकारी प्रभावों के बावजूद तथा उसके विभिन्न संघटकों को सम्मिलित करते हुए बड़ी संख्या में महत्त्वपूर्ण समष्टिपरक आर्थिक चरों में अपेक्षाकृत अधिक उतार. चढ़ाव हुए हैं। इस प्रकार की प्रवृत्तियों ने अपेक्षाकृत अधिक आर्थिक अनिश्चितता उत्पन्न की है जो दीर्घकालीन वृद्धि के अनुकूल नहीं होती है तथा आर्थिक अभिकर्ताओं को अधिक तरल रहने के लिए बाध्य करती है। भारत में न तो राजकोषीय और न ही मौद्रिक नीति व्यवसाय चक्र को स्थिरता प्रदान करती है। जिसके परिणामस्वरूप मंदी आने की स्थिति में भारत के लिए नीचे की ओर जोखित परिपक्व बाजार अर्थव्यवस्थाओं की अपेक्षा अधिक है।

3) कृषीय क्षेत्र का कार्य निष्पादन अल्प तथा मध्यम काल में लगभग बाह्यजनित दिये होने तथा सेवा क्षेत्र की वृद्धि की स्वयं की गति होने से औद्योगिक क्षेत्र की वृद्धि दर ही संपूर्ण ळक्च की अपेक्षा अर्थव्यवस्था की प्रगति का एक बेहतर माप है। सुधारों के पूर्व की अवधि की तुलना में सुधारों के पश्चात् की अवधि में सभी क्षेत्रों में औद्योगिक कार्यनिष्पादन अपेक्षाकृत धीमा रहा है। इसके कम से कम तीन पूरक कारण हैंः प्रथम, श्रम कानूनों के कारण उद्योग अपनी गतिविधियों का निरंतर बाह्यस्रोतीकरण कर रहा है ताकि वास्तव में उद्योग में होने वाली वृद्धि की गणना सेवाओं में वृद्धि के रूप में की जाय। द्वितीय, श्रम कानून एवं ऊर्जा के क्षेत्रों में कुछ महत्त्वपूर्ण अनिवार्य सीमितताओं के कारण बड़े पैमाने की फर्में अब भी बाजार में प्रवेश करने की इच्छुक नहीं हैं।

References:

1) Dhingra, I. C. (2012): *The Indian Economy,* Sultan Chand, New Delhi,
2) OECD Economic Survey INDIA, June 2011, Academic Foundation, New Delhi
3) Papola, T.S. (2011): *'Structure of India"s Economic Growth: Trends and Implications:* delivered at IGNOU.
4) Planning Commission, Government of India, *Eleventh Five year plan (2007- 12) Inclusive Growth,* Volume I.
5) Planning Commission, Government of India, *Eleventh Five year plan (2007- 12) Social Sector,* Volume II.